International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 980-982

सन्त मलूकदास के काव्य में राजनीतिक जीवन

हर्षदीप
गांव–ढाणी चानन राम, डा0–कूकडावाली, जिला–फतेहाबाद, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

सृष्टि के प्रारम्भ में न तो राजा थे और न राज्यों की ही व्यवस्था थी। इस समय सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति परस्पर सहायता से हुआ करती थी। समाज की यह व्यवस्था बहुत दिनों तक नहीं चल सकी। असामाजिक और विध्वंसक तत्वों का विकास होता गया। सबल और समर्थ शक्तियाँ निर्बलों और असमर्थों का शोषण करके अपने स्वार्थों की पूर्ति करने लगीं। समाज में मत्स्य न्याय फष्पित और पल्लवित होने लगा। इस विनाशक और अहितकर स्थिति से मुक्ति पाने के लिए एक ऐसे तत्व की आवश्यकता प्रतीत हुई जो समाज के समग्र रूप का सम्यक् रूप से नियमन कर सके। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए तत्कालीन समाज के सदस्यों ने मिलकर अपने ही बीच के योग्य व्यक्ति को राजा निर्वाचित कर उसके शासनाधीन रहना स्वीकार किया। कौटिल्य ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि मत्स्य न्याय से अभिभूत प्रजा ने वैवस्वत मनु को राजा बनायाः

मात्स्यन्यायाभिभूता प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे।

मलूक युगीन भारत यवन शासकों द्वारा शासित एवं प्रताड़ित था। उस समय बादशाह सर्वेसर्वा होता था। उसकी आज्ञा ही देश का विधि विधान माना जाता था। धर्म परिवर्तन के हेतु अमानुषिक अत्याचारों तथा नृशंस हत्याओं को खेल समझा जाता था।

काल दुकाल परे जब आई। सदाव्रत दहि अधिकाई।
साहिजहाँ पातसाह फनि मूए। दुद देश में चौहुँ दिस भए।।[1]

इस प्रकार राज्य व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रजा जिसे अपना मुखिया या नेता निर्वाचित करती है, वह राजा कहलाता है। यह राजा जब अपनी निर्माण कारिणी प्रजा पर उसकी सुख सुविधा के लिए नियमों का पालन करते हुए मनसा वाचा कर्मणा शासन करता है, तब हम इस शासन पद्धति को राजतन्त्र या राजसत्ता कहते हैं।

औरंगजेब ताहि सुत एका। बैठि राज तिन यिा विवेका।
काल रूप पातसाह होई बैठा। बूझन भाउफ छवौ घर पैठा।।[2]

राजतन्त्र में राजा ही राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता है। राजा की सहायता के लिए एक मन्त्रि परिषद होती है जो उसे कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान कराती रहती है। राजतन्त्र में राजा तभी तक सत्ताधारी रहता है जब तक उसे प्रजा का विश्वास प्राप्त हो। शासन की इस पद्धति में राजा के निर्वाचन का आधार रक्त सम्बन्ध न होकर पराक्रम और योग्यता है। राजतन्त्र और कुलीनतन्त्र में यही अन्तर है। कुलीनतन्त्र में यह निश्चित है कि यदि पिता राजा है तो फत्र भी राजा होगा, वह उसके योग्य हो अथवा नहीं। राजतन्त्र में स्थिति बिल्कुल इसके विपरीत है। इसमें राजा के पद का भार उसी को सौंपा जाता है जो उसके योग्य हो। कहने का तात्पर्य यह कि राजतन्त्र में योग्यता राजा के निर्माण का मुख्य आधार है तथा वंशपरम्परा आदि बातों का स्थान यहाँ गौण है।

उनके अनुसार राजा और प्रजा का भेद भाव नहीं होना चाहिए। उनका तर्क है जब सब का उद्गम एक ही मूलतत्व से है तब सब परस्पर समान है, भाई–भाई हैं। उन्हें एक दूसरे के दुख में समान भाव से सहाय होना चाहिए।

प्रथ श्रेस्ट औतार मनवंतर शंभु मनुहि श्रेस्ठ कै जानहुँ।
दुतिय मनुवंत सारो चख उत्तम तामसेर पतहि बखानहुँ।।[3]

विचाराकों ने राजतन्त्र को शासन पद्धति की सुन्दरतम व्यवस्था कहा है क्योंकि इस व्यवस्था में राजा स्वेछाचारी नहीं हो सकता। राजतन्त्र में राजा वही कर सकता है जिसकी अनूमति मन्त्रिपरिषद दे। राजा मन्त्रिपरिषद का नेता होता है। राजतन्त्र भारतवर्ष की प्राचीनतम शासन पद्धति है। वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में वैदिक काल में राजतन्त्र की सम्यक व्यवस्था थी। अथर्ववेद में कहा गया है कि प्रारम्भ में यह समस्त जनपद विराट अथवा राजा से रहित था। उसे देखकर लोग भयभीत हुए कि क्या यह ऐसा ही रहेगा।[4] ऐतरेय ब्राह्मण में बताया गया है कि जब असुरों और देवताओं की लड़ाई में देवता हार गए तब उन्होंने सोचा कि हमारा कोई राजा न होने से हमें असुर हरा देते हैं। हम सब मिलकर एक राजा निर्वाचित करें। सब ने उसे स्वीकार किया और सोम को राजा बनाया।[5] मनुस्मृति में अराजक अवस्था की चर्चा करते हुए कहा गया है कि इस राजा विहीन लोक में सब लोग भ्रम से चारों ओर भागने लगे, तब इसकी रक्षा के लिए परमेश्वर ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर के अंश लेकर राजा की सृष्टि की।[6]

हिंसा, शोषण, वैषम्य, भेद प्रभेद, सैन्यीकरण, हिंसक रक्तपात एवं अधर्म को उनके अहिंसक समतावाद में स्थान नहीं है। किसी भी प्रकार का वैषम्य तो मलूक को मान्य ही नहीं क्योंकि वह वैषम्य विनाशशील है। उनके मत मेंः–

'तीरथ जाई करै जोई कोई। बिनु दया सब निष फल होई।।
पंडित पोथी पढ़ैं पचास। बिनु दया सब हो होई निरास।।
जैसी बकरी तैाी गाई। ऐन के कुहे रसातल जाई।।
बाँधि बाँधि मुख खून कराई। भाड परौ अैसी पंडिताई।।
जीवत जीव अग्नि में परै। अैसा जग्य कसाई करै।।[7]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए राजा की आवश्यकता होती है। किसी क्षेत्र में किसी एक राजा के नेतृत्व में किए गए शासन को हम राजतन्त्र कहते हैं। इस राजतन्त्र में राजा प्रत्यक्ष रूप से तो स्वामी होता है किन्तु परोक्षरूप से वास्तव में वह प्रजा का सेवक ही होता है। प्रजाहित

के लिए ही राजा की नियुक्ति होती है। माता जिस प्रकार अपने हित का ध्यान रखकर फत्र के हित का ध्यान रखती है वैसे ही राजा को अपने मनमाने कार्य न करके प्रजा के हित के काय्र करना चाहिए। राजा का सनातन धर्म प्रजारंजन, सत्य रक्षण और नीर क्षीर न्याय है। राजतन्त्र के राजा के लिए आवश्यक है कि वह पराक्रमी क्षमावान, सत्यवादी और क्रोध को वश में करने वाला हो।

धर्मविहीन मलूकदास जी को अमान्य है। कोई भी राज्य हो वहाँ विभिन्न धर्मों का पालन करने वाले अवश्य ही रहेंगे। मलूक धर्म के विशेष अंग से प्रभावित नहीं होते। पूजा पाठ, नमाज, भजन भाव, रोजा, ग्रन्थपूजन एवं विविध भाँति की उपासना प(तियों के उपर पारस्परिक विद्वेष को वह अच्छा नहीं समझते।

जा घर नाहिं ना हरि नाम।
ता घर सदा मसान वरतत भूत को विश्राम।।
विमुखिन को माल मन्दिल कृष्ण के केहि काम।
कहै मलूका तातें पशु भले जाको चाम आवत काम।।[8]

राजतन्त्र तभी स फल हो सकता है जब राजा में आदर्श राजा के सभी गुण हों। जब राजा प्रजा के हित को ध्यान में न रखकर मनमानी करने लगता है तथा अपनी इच्छा को मुख्य तथा मन्त्रिपरिषद की सलाह को गौण महत्व देता हुआ प्रजा के अभिमत का उल्लंघन करता है, तब राजतन्त्र अपने उद्देश्य से च्युत हो जाता है और वह एक दोषपूर्ण शासन पद्धति का स्थान ग्रहण कर लेता है। परिणामस्वरूप राजा और प्रजा की विभेदक रेखा गहरी होती जाती है। धीरे–धीरे यही रेखा एक गहरी खाई के रूप में परिणत हो जाती है और राजतन्त्र ऐसी सुन्दर, श्लाघ्य और श्रेयस्कर शासन व्यवस्था एक कलुषित शासन पद्धति का रूप ग्रहण कर लेती है। इस अवस्था के आजाने पर कुलीनतन्त्रता को बढ़ावा मिलता है और शासन सत्ता अयोग्य तथा अकुशल राजाओं के हाथ में चली जाती है। महात्मा गाँधी आदि विचारक सन्तों ने राजतन्त्र के इसी कलुषित रूप की निन्दा की है। राम राज्य ऐसे आदर्श राजतन्त्र की प्रशंसा और सराहना सभी सन्त विचारक मुक्त कंठ से करते पाए जाते हैं।

मनुष्य सभ्यता और उत्कर्ष की दिशाओं में ज्यों ज्यों अग्रसर होता गया, त्यों त्यों उसने अपने सामाजिक स्वरूप को संगठित करने तथा निश्चित विधि विधानों के अनुसार चलाने का प्रयास भी किया। इन विधि विधानों के आधार पर शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व समाज में गण मान्य माने गए और इस प्रकार राजा प्रजा का भेद प्रचलित हो गया। काल की गति के साथ सत्ताधारियों का एक वर्ग विशेष ही स्थापित हो गया। समाज में उसका विशिष्ट सम्मान, उसके प्रति समाज की विशिष्ट निष्ठा श्रद्धा का प्रदर्शन, भौतिक ऐश्वर्यपूर्ण जीवन और उसका प्रभुत्वपूर्ण रहन सहन अन्य लोगों से सर्वोच्च माना जाने लगा।

ऐसे राजकुलों की पीढ़ी दर पीढ़ी राजा बनते चले गए। पृथ्वी के अनेक खंड निर्माण करके उन्हें अलग अलग राज्यों के नाम से फकारा जाने लगा। अपने अपने राज्यों की रक्षा एवं वृद्धि के लिए पारस्परिक युद्धों का होना और इसके लिए सेना तथा आयुधों का स्थापत्य होना स्वाभाविक था। इस प्रकार भाँति–भाँति की राज पद्धतियों का विकास हुआ और अनेक प्रकार के शासन सूत्रों का प्रसार सर्वत्र हो गया।

ज्ञान भंडार वेदों में राजनीति तथा शासन सूत्र और सत्ता आदि के सम्बन्ध में उल्लेख है इनसे प्रतीत होता है कि भारतवासी मातृभूमि एवं देश के प्रति सजग रहते थे तथा राष्ट्र एवं देश के रक्षार्थ बड़े से बड़ा बलिदान एवं त्याग करने को तत्पर रहते थे। राष्ट्रीयता तथा राष्ट्र प्रेम की भावना की पूर्ण प्रतिष्ठा थी। राष्ट्रों के विभाग, उनका प्रबन्ध, शासन का कार्यान्वयन सब का पूर्ण ज्ञान भारतवासियों को था। ऋग्वेद में मातृभूमि की सेवा करने का आदेश दिया गया है– उप सर्प मातर भूमिम्।[9]

यजुर्वेद में राष्ट्र के नेता एवं जागरणशील राष्ट्रीयता से पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की कामना की गई है।[10] अथर्ववेद में मातृभूमि की सेवा एवं दुखः मोचनार्थ हर प्रकार का कष्ट, दुख सहने की तत्परता पर बल दिया गया है तथा कष्टों का सहर्ष निर्भीक भाव से सहन करना श्रेयस्कर बताया है।[11] अथर्ववेद में मातृभूमि को माता और अपने को उसका फत्र चित्रित किया गया हैः फ्माता भूमिः फत्रो अहं पृथिव्याः।[12] राज्य व्यवस्थाओं में उस समय स्वराज्य को उत्तम व्यवस्था समझा जाता था। ऋग्वेद में स्वराज्य की स्थापना के लिए सदैव प्रयत्नशील रहने की भी कामना की गई है– यतेमहि स्वराज्ये।[13]

इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतवासी सत्ता, शासन पद्धतियों एवं राष्ट्रवाद के ज्ञाता थे। देश भक्ति और देश सेवा के प्रति जागरूक रहना अपना परम कर्तव्य समझते थे। राष्ट्रवाद का स्वरूप एवं उसके प्रति कर्तव्यनिष्ठ रहने का उन्हें पूरा ज्ञान था। भारतीय राष्ट्रवाद की यह मौलिकता रही कि वह आध्यात्मिकता तथा दिव्य गुणों से पूर्ण व्यक्तियों द्वारा संचालित किया जाता था। यहाँ व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, वैभव, स्वार्थ तथा विलासिता पूर्ण जीवन को हेय दृष्टि से देखा जाता था। भारत में अनेक मत मतान्तरों का प्रचलन होते हुए भी वे सम्प्रदाय मूलतः सत्य, अहिंसा, क्षमा, दया आदि सार्वभौम आदर्शों का किसी न किसी रूप में पालन करते रहे हैं। यहाँ विभिन्न भाषाओं और बोलियों के मध्य भी एकता बनी रही है। धन धान्य से पूर्ण भारत सदैव ही बाहरी आक्रमणों का शिकार रहा है। भारतीय जनता अपने दृढ़ साहस एवं वीरत्व के साथ उन आक्रमणों का सामना करती रही है तथा मर्यादाओं, धार्मिक भावनाओं एवं आध्यात्मिकता का पूर्णतः परिपालन करती रही है।

देवालय एवं देवमूर्तियों का विध्वंस तो दैनिकचर्या बन गई थी शासकों की। सभी ओर निराशा, भय, दारिद्रय, उत्पीड़न, शोषण एवं अविश्वास व्याप्त थे। महात्मा मलूक ने उस राजनीतिक अत्याचारी व्यवस्था को देखा।[14] उन्होंने अपनी अदम्य अहिंसक शक्ति द्वारा उस अत्याचार एवं राजनीतिक शोषण का प्रतिकार किया। तत्कालीन बादशाह औरंगजेब के चाटुकार सामन्तों ने मलूक के सम्बन्ध में अनेक कपोल कल्पित एवं असत्य बातों द्वारा कान भरे।

बादशाह ने महात्मा मलूक के उफपर अनेक अत्याचार किए।
साहिजहाँ सुत औरंगजेबा। चलै सुपंथ कुरान कितेबा।
वेद फरान मने करवावै। बामन पूजा कर न पावैं।।
काजी मोलना की करै बड़ाई। हिन्दू को जजिया लगवाई।
तब बहौरौ मथुरा चलि आयो। पाखण्ड देखी सब मंदिल ढहवायो।।
काशी में देवता विस्तारा। कला न देखी सबै बोढ़ारा।।[15]

निर्भीक मलूक ने सभी विपदाओं को हर्ष के साथ सहन किया। वहाँ मलूक की वाणी में उनकी अंतरात्मा मुखर हो उठी। इतिहासकार प्रकाशचन्द के अनुसार सामाजिक शोषण, अनाचार और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में आज भी सन्तों का काव्य एक तीखा अस्त्र है। मलूकदास से हम रूढ़िगत सामन्ती दुराचार और अन्यायी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध डट कर लड़ना सीखते हैं और यह भी सीखते है कि विद्रोही कार्ये किस प्रकार अन्त तक शोषण के दुर्ग के समाने अपना माथा उफँचा रखता है। ऐसे अधिनायकवाद के विरोध में मलूक ने अपने उपदेशों द्वारा प्रचार किया। उन्होनें स्वेच्छाचारी, शोषक राज सत्ता का उन्मूलन करके उसके स्थान पर कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने की ओर संकेत किया। मलूक सैन्यादल के

संगठन, एक दूसरे पर हिंसक आक्रमण, विनाशकारी कृत्यों, निरही मानवों के संहार को घृणित कार्य बताते हैं।

द्वारिका माह तुरुक पठाए। रनछोर को अस्थान ढहाए।
बद्रीनाथ गोकुलहि उजारा। जगन्नाथ कौ किया त्रिस्कारा।।[16]

राजकोष का धन यदि प्रजा के कल्याणार्थ व्यय न करके उस धन को राजा निज स्वार्थ की पूर्ति में लगावे तो मलूक की दृष्टि में वह चाहे जितना वैभवपूर्ण बादशाह हो एक कृपण के समान ही है। जिस ह्रदय में प्राणीमात्र के लिए प्रेम नहीं वह ह्रदय ही नहीं है। विलासी जीवन व्यतीत करना, अनाचार, व्यभिचार के चंगुल में फँसे रहना, हिंसा, धोखा धड़ी के व्यवहार मलूक को अमान्य हैं। ऐसे कल्याणकारी जीवन से विनाश ही होता है। इन नाम रूपात्मक संसार के ये दृश्य दो दिन के तमाशे हैं।

मोक्ष धर्म काम और अर्धा। देवे को अति बड़े समर्था।
पूर्व, पछिम, उत्तर, दक्षिण। चारो बरन चाहि लैं सिछन।।[17]

आध्यात्मिक एकत्वपूर्ण जीवन के स्थापत्य के हेतु मलूक जीवन के किसी भी भेद भाव युक्त क्षेत्र को अँगीकार करने को तैयार नहीं है।

निष्कर्ष

मलूक के अनुसार राजा और प्रजा नामों का भी प्रचलन बन्द होना चाहिए। राजा को प्रजाहितकारी, जन सेवक बन कर अनन्य भाव से सब के हित के कार्यों में व्यस्त रहना चाहिए। समस्त प्राणी मात्र के साथ सात्विक प्रेम के द्वारा सहानुभूति पूर्ण व्यवहार के साथ निरासक्त भाव से जन सेवा को कर्तव्यमात्र समझ कर शासन चलाना चाहिए।

संदर्भ

1. सन्त मलूक ग्रन्थावली, पृ. 326
2. वही, पृ. 327
3. वही, पृ. 219
4. विराड् वा इदमग्र आसीत।
   तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति।। –अथर्ववेद, 8/10/1
5. ऐतरेय ब्राह्मण, 1/3
6. मनुस्मृति, अध्याय 7
7. वही, पृ. 137
8. सन्त मलूक ग्रन्थावली, पृ. 138
9. ग्वेद, 10/18/10
10. वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः यजु, 9/23
11. अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
    अभीषास्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः।। –अथर्ववेद, 12/1/54
12. अथर्ववेद, 12/1/12
13. ग्वेद, 5/66/6
14. वही, पृ. 326
15. सन्त मलूक ग्रन्थावली, पृ. 327
16. वही, पृ. 327
17. सन्त मलूक ग्रन्थावली, पृ. 327